ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. NO.- 265-270

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-III, Issues-18, YEAR- Dec. -2020

किसान, पूँजीपति, 'महात्मा' और 'मुंशी'

रमेश चन्द शुक्ल
Email : aaryvrat2013@gmail.com

Received- 28.06.2020, Revised- 01.07.2020, Accepted - 04.07.2020

सारांश– *जीवन के लगभग अंतिम दिनो में मुंशी प्रेमचन्द ने दो और महत्वपूर्ण कार्य किये। सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के पहले अधिवेशन का उद्घाटन और उसमें दिया गया अध्यक्षीय भाषण और दूसरा उनका महत्वपूर्ण लेख 'महाजनी सभ्यता।' इन दोनों ही के आधार पर कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष सामने आते हैं –*

1. सामाजिक संदर्भों में पूंजीवाद और समाजवाद में जो अन्तर है वही साहित्य के संदर्भ में कलावाद और उपयोगितावाद का है।

2. जिन औजारों से साहित्य को सामाजिक परिप्रेक्ष्य की ओर मोड़ा जा सकता है उन्हीं औजारों से सामाजिक जड़ता को उखाड़ फेका जा सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने सम्पूर्ण रचनात्मक समय में इस निमित्त मुंशी जी बराबर अपने हथियारों को धार देते रहे। और जब वे साहित्य को 'जीवन की आलोचना' के रूप में देखने का प्रस्ताव करते हैं तो उनका मकसद एक ऐसी जिन्दगी का संकेत देनाथाजो इंसान वास्तव में जीता या भोगता है।

कुंजीभूत शब्द–वर्णाश्रम व्यवस्था, संधि–विच्छेद, सम्बन्ध, कर्म, स्वभाव ।

एसो0 प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, एम0डी0पी0जी0 कॉलेज, प्रतापगढ़ (उ0प्र0) भारत

अनुरूपी लेखक

आकस्मिक नहीं कि अध्यक्षीय उद्बोधन में उन्होंने जीवन की उसी वास्तविकता की ओर एक बार फिर संकेत किया : 'कल्पना के गढ़े हुए आदमियों में हमारा विश्वास नहीं है, उनके कार्यों और विचारों से हम प्रभावित नहीं होते हमें इसका निश्चय हो जाना चाहिये कि लेखक ने जो सृष्टि की है वह प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर की है और वह अपने पात्रों की जुबान से खुद बोल रहा है।'

अंततः साहित्य का उद्देश्य मनुष्यताके साक्षात्कार के साथ–साथ एक ऐसे समाज की संरचना भी है जो समता, प्रेम, न्याय की नींव पर टिका हो। इस स्वप्न को पूरा करने के लिये धर्म और नैतिकता के थोथे दावों से काम नहीं चलने वाला। क्योंकि – 'धर्म प्रवर्तकों ने धर्म, नैतिकता के आध्यात्मिक बंधनों द्वारा इस स्वप्न को सतत् सच बनाने का निष्फल प्रयत्न किया है। महात्मा बुद्ध, हजरत ईशा, हजरत मोहम्मद आदि सभी पैगम्बरों और धर्म प्रवर्तकों ने नीति की नींव पर इस समता की इमारत खड़ी करनी चाही, पर किसी को सफलता नहीं मिली और छोटे–बड़े का भेद जिस निष्ठुर रूप में आज प्रकट हो रहा है शायद कभी न हुआ था। (प्रेमचंद : प्रतिनिधि संकलन सं0–खगेन्द्र ठाकुर पृष्ठ–8).

कुल मिलाकर निष्कर्ष यह कि– 'आजमाये को आजमाना मूर्खता है' फिर नया तरीका क्या हो? प्रेमचन्द बताते है कि सदियों से साहित्य की चली आती परम्परा को, चरित्रों को, सौन्दर्य के जड़ीभूत प्रतिमानों को बदलने की जरूरत है। बदलने की जरूरत उस व्यवस्था को है जिसने साहित्य को महज लफ्फाजी और समाज को महज पाखण्ड में बदल दिया है। प्रेमचन्द उपदेशक नहीं है, वह साहित्य के जुझारू सिपाही है जो साहित्य के पारंपरिक बुर्जों से की गयी गोलाबारी को झेलते रहे और अंततः हिन्दी को ज्यादा गहरा, ठोस संवेदनाओं पर आधारित कथा साहित्य दिया। मुंशी प्रेमचन्द का ज्यादातर लेखन स्त्रियों और किसानों पर ही केन्द्रित है सेवासदन, निर्मला, गबन में स्त्री और उसके मनोभावों का सूक्ष्म चित्रांकन मिलता है, तो किसान समस्या से सुनियोजित औपन्यासिक परम्परा में प्रेमाश्रम, कायाकल्प, कर्मभूमि और गोदान प्रमुख है। 'प्रेमाश्रम' उनका ऐसा पहला उपन्यास है जो जिसमें बेगार और बेदखली की समस्या उठायी गयी है। इस उपन्यास के रचना की पृष्ठभूमि राजनीतिक तौर पर वह कालखण्ड है जब महात्मा गांधी के नेतृत्व में किसानों की समस्याओं को उठाया जाने लगा। उपन्यास में इसका संकेत बलराज देता है : यही न होगा कैद होकर चला जाऊंगा इससे कौन डरता है? महात्मा गांधी भी तो कैद हो आए हैं।" गांधी जी को दक्षिण अफ्रीका में जो सफलता मिली थी उसका शोर हिन्दुस्तान तक आया साथ ही कई तरह की अफवाहें भी फैली। भारतीय किसान उन्हें अपने त्राता के रूप में कल्पित कर रहा था और यह उम्मीद पाले था कि शीघ्र ही 'स्वर्ण–युग' जैसा कुछ आने वाला है। किसानों की मुख्य समस्या थी बिचौलियों की, जो अंग्रेज शासकों और जमींदारों का मध्यवर्ती था। इसी के ऊपर लगान वसूलने की जिम्मेदारी भी थी इन्हीं को मुंशी प्रेमचन्द ने गुमास्तों, कारिन्दों कारकूनों, तहसीलदार और सिपाहियों के रूप में प्रकल्पित किया है।

'प्रेमाश्रम' की समस्या को समझने के लिये मुंशी प्रेमचन्द का एक महत्वपूर्ण लेख 'अंधा पूंजीवाद' बड़े काम का है। इस लेख में गोरे पूंजीपति मि0 बुल और काले पूंजीपति सेठ पुनपुनवाला दोनों को ही सांपनाथ और नागनाथ के रूप में प्रकल्पित किया गया है। अब

दिक्कत यह कि इन दोनों की भावात्मक एकता को न समझने के कारण भारतीय किसान सेठ को न केवल वैष्णव बल्कि अपना उद्धारक भी समझता है। लेकिन जब वही किसान अपना ऊख लेकर उनकी मिल पर तौलाने जाता है तो उसे पता चलता है कि जिसे वह देशी समझकर अपना हितू–मितू मानता चला आ रहा है वह तो और भी बड़ा आदमखोर है। विचित्र यह कि स्वतंत्रता संग्राम की सारी लड़ाईयां इन्हीं लोगों ने लड़ी जो राष्ट्रवादी, धर्मात्मा और देशभक्त हैं साथ ही साथ कहीं बहुत भीतर से बंधु–द्रोही और लुटेरे भी हैं। प्रेमचन्द इसी आलेख में यह भी बताते हैं कि – 'जहां अंग्रेजों के मिलों में किसानों के साथ सफाई का व्यवहार किया जाता है वहां भारतीय मिलों में इन गरीबों को तरह–तरह से सताया जाता है, कई–कई दिन उनकी ऊख नहीं खरीदी जाती जहां तक कि ऊख सूखने लगती है तो उसे नाममात्र का दाम देकर गिरवा लिया जाता है। प्रेमाश्रम में इसका संकेत शुरू में ही मिल जाता है : 'मनोहर ने कहा भाई हाकिम तो अंग्रेज अगर यह न होते तो इस देश वाले हाकिम हम लोगों को पीसकर पी जाते' देशभक्ति और बन्धुता का तकाजा तो यह होना चाहिये था कि अंग्रेजों द्वारा जमींदारी का दायित्व जितने लगान पर दिया गया था उससे कुछ कम लगान वसूल की जाती। लेकिन जमींदारों में बिचौलियों को पैदाकर खुद शहरों की राह ली। बिचौलियों की इस व्यवस्था के बीच रैयतों की इससे इतर कौन सी दशा हो ही सकती थी कि : अभी रब्बी में महीनों की देर है और घर में अनाज का दाना नहीं है ..... बैल बैठाऊ हो गया है डेढ़ सौ रूपये लगेंगे तब कहीं एक बैल आयेगा।" अथवा इसी उपन्यास के दूसरे किसान का यह कथन : क्या जाने क्या हो गया है कि अब खेती में बरक्कत ही नहीं रही पांच बीघे रब्बी बोयी थी, लेकिन दस मन की भी आशा नहीं है और गुड़ का तुम जानते ही हो जो हाल हुआ। कोल्हाड़े में ही विसेसर साह ने तौला लिया। बाल–बच्चों के लिए शीरा तक न बचा। देखें भगवान कैसे पार लगाते हैं। ठीक इन चित्रों के विपरीत एक बिचौलियें का वर्णन है– 'तहसीलदार साहब तो ऐसे मालूम होते हैं जैसे कोल्हू। अभी पहले आये थे तो कैसे दुबले–पतले थे लेकिन दो ही साल में उन्हें न जाने कहां की मोटाई लग गयी।' हिन्दुस्तान में आदमी की बिल्कुल एक नयी नस्ल तैयार हुई थी मोटा, चिकना और चकाचक। यह नवशिक्षित वर्ग था जिसका ज्यादातर काम अपने से मजबूत की जी–हजूरी और अपने से छोटों की गर्दन दबोचना था। गांधी जी के असहयोग आन्दोलन के शुरू होते–होते संयुक्त प्रान्त में भी एक ऐसा बौद्धिक वर्ग पनपा जिसके हाथों में राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर थी। खास बात यह कि यह वर्ग उसी पुराने वर्ग का नुमाइन्दा था, जो सदियों से सुखजीवी रहा है। इस पढ़े–लिखे नवशिक्षित वर्ग से जनता को बड़ी उम्मीद थी वे सोच रहे थे कि दासता की बेड़िया कटेंगी, विदेशियों से मुक्ति मिलेगी और एक ऐसा युग आयेगा जिसमें किसी तरह की ज्यादती उनके साथ नहीं होगी। लेकिन उनका सोचा जैसा कुछ कहीं भी नजर नहीं आ रहा है। कारण यह कि यही पढ़ा–लिखा मध्यम वर्ग तहसीलदार, कानूनगो, पटवारी है जो कागजों के फेरफार से जनता को बरगलाता है। प्रेमाश्रम में दुखरन एक जगह कहता है कि 'कहते हैं विद्या से आदमी की बुद्धि ठीक हो जाती है, पर यहां उल्टा ही देखने में आता है यह हाकिम और अमले तो पढ़े–लिखे विद्वान होते हैं लेकिन किसी को दया–धर्म का विचार नहीं है।" मुंशी प्रेमचन्द पुरानी सामन्ती व्यवस्था और नई जमींदारी प्रथा के बीच उस समय विभाजक रेखा भी खींच देते है जब मनोहर कहता है कि : 'हमारे बड़े सरकार जब तक रहे दो साल की मालगुजारी बाकी पड़ जाती थी, तब भी डांट–डपट कर छोड़ देते थे, छोटे सरकार जब से मालिक हुए हैं देखते हो कैसा उपद्रव कर रहे है। रात–दिन जाफा, बेदखली, अखराज की धूम मची है।" जमींदारों के इस नयें दाव–पेंच के खिलाफ स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान किसानों के हितों के लिये हिन्दुस्तान के तमाम भागों और संयुक्त प्रान्त अवध में किसान–सभाओं का गठन हुआ। किसान सभाओं के गठन के पीछे निश्चय ही महात्मा गांधी की प्रेरणा थी जो चम्पारन और खैरा से चलती यहाँ पहुँची थी। इस औपन्यासिक स्थल पर नवजागरण के पश्चात् आयी भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर सवाल सा उठाया गया है। साथ ही साथ तरक्की पसंद पाश्चात्य शिक्षा के प्रति अस्पष्ट सी रूझान भी प्रदर्शित की गई हो। 'प्रेमाश्रम' का ज्ञानशंकर हिन्दू विश्वविद्यालय का स्नातक है, यानी वह पढ़ा–लिखा है कर्म उसके निकृष्ट–करतब बायस भेष मराला। जब कि उसका बड़ा भाई प्रेमशंकर अमेरिका के किसी विश्वविद्यालय से कृषि वैज्ञानिक होकर लौटा है। शिक्षा का यह सारा गड़बड़झाला आधुनिकता में दकियानूसी मान्यताओं की मिलावट से पैदा हुआ। गांधी जी बुनियादी शिक्षा पर जोर देते रहे लेकिन इस बुनियादी शिक्षा ने ज्ञानशंकर जैसे लोगों को पैदा किया। ठीक इसी तरह से किसानों के आन्दोलन को गति देने की मुहिम में गांधी जी लगे लेकिन सच यह भी था कि गांधी जी का किसानों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था। चम्पारन और कैरा के किसानों को लगान में जो थोड़ी बहुत रियायत मिली थी उसका श्रेय ऐसे लोगों को जाता है जिन्हें अंग्रेज "सब–कान्ट्रैक्टर्स" कहती थी। ऐसे लोगों मे राजेन्द्र प्रसाद, अवधेश नारायण सिन्हा जैसे वकील और कृपलानी जैसे मुजफ्फर कालेज के अध्यापक थे। गांधी जी ने चंपारन के किसानों को यह रियायत दिलायी कि वे भूमि के तिहाई हिस्से में ही नील की खेती करेंगे। इस छोटी रियायत का मनोवैज्ञानिक असर किसानों पर पड़ा। एक रैय्यत ने

गांधी की तुलना श्रीराम से की और जांच समिति के सामने बयान दिया कि – 'अब गांधी जी आ गये हैं तो किसानों को राक्षस निलहों का कोई भय नहीं है। (आधुनिक भारत : सुमित सरकार, पृष्ठ 203,) बिहार और गुजरात किसान अन्दोलनों के समानांतर संयुक्त प्रान्त में मालवीय जी के शिष्य इन्द्र नारायण द्विवेदी ने 1918 में ही संयुक्त प्रान्त किसान सभा' की स्थापना की। उल्लेखनीय है कि मालवीय मदन मोहन के सम्बन्ध इलाहाबाद के व्यापारिक घरानों टण्डनों और अग्रवालों से बहुत प्रगाढ़ थे। कालान्तर में इस सभा में बाबा रामचन्द्र का नाम भी जुड़ा। बाबा रामचन्द्र पहले फिजी में गन्ना मजदूर रह चुके थे बाद में साधू हो गये। बाबा रामचन्द्र ने प्रतापगढ़ से अपने कृषक–आन्दोलन की शुरूआत की। इनके आन्दोलन में कुछ जातिगत नारों का पुट था और किसान–सभाओं के दौरान रामचरित मानस का प्रवचन भी होता था। बाबा रामचन्द्र और गौरीशंकर मिश्र के उद्योग से ही जवाहर लाल नेहरू किसान आन्दोलनों में शामिल हुए। प्रेमाश्रम में किसानों और जमींदारों के मध्य जिस संघर्ष का चित्र मिलता है वह प्रतापगढ़ और सुल्तानपुर में नेहरू द्वारा परिचालित किसान आन्दोलनों से ही प्रेरित है। हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द की आरंभिक औपन्यासिक रूझान लड़ाकू रही है। अर्थात् वे किसानों और जमींदारों के संघर्ष से अपनी औपन्यासिक कला का शिलान्यास करते हैं। लेकिन अन्त तक पहुंचते–पहुंचते एक समझौता, एक प्रेमाश्रम की स्थापना जिसमें किसान अपने दमनों को भुलाकर वर्ग समन्वय स्थापित कर लेते हैं। आरम्भिक उपन्यासों चाहे वह प्रेमाश्रम हो, कर्मभूमि अथवा कायाकल्प हो में लगभग यही निदान किसान–समस्या का मिलता है। यह निदान गांधी जी के उस वाक्य पर आधारित है जो 'हरिजन' में एक बार छपा

जो शुक्राणु से मिलकर भ्रूण बनाता है। अतः सही समय एंव सही स्थान पर कृित्रम गर्भधान द्वारा गर्म पशु को गर्भित कराना चाहिए।

7. दूषित वातावरण एंव कुप्रबंधन– (Bad Environment and Faulty management) पशुओं पर पर्याप्त तापक्रम , रोशनी तथा सुप्रबन्ध का पशु प्रजनन पर काफी अच्छा प्रभाव पड़ता है। यदि पशु को गन्दे, ॲंधेरे, बिना रोशनदान,के पशुशाला में रखा जाता है। तो प्रजनन शक्ति का हास होता है तथा पशुओं में बिमारी बढ़ने की सम्भावना बढ़ जाती है एंव उसके स्वास्थ पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ता है।

उपचार एंव रोकथाम– यदि बॉझपन रोग कुपोषण की वजह से है तो पशु को सन्तुलित आहार दिया जाए। जिसमें प्रोटीन खनिज लवण तथा विटामिन देना चाहिए तथा उसे पर्याप्त मात्रा मे हरा चारा खिलाया जाना चाहिए। यह उसके उत्पादन तथा प्रजनन दर में वृद्धि करता है। यदि यह रोग हारमोनो के असन्तुलन के कारण हुआ है। तो उसका था और गांधी जी जिसे बार–बार दोहराया करते थे– 'स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए हिन्दुस्तानी जनता को जातियों, वर्गों और अपने स्वार्थो को भुलाकर एक ही मंच पर खड़ा होना चाहिये और वह मंच है भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का।" इस तरह गांधी जी न केवल हिन्दुस्तानी जनता के दुश्मनों में उपनिवेशवादियों को मानते थे बल्कि पूंजीपतियों और जमींदारों को उससे अलग भी रखते थे। अहमदाबाद मिल–मालिकों के विरूद्ध मजदूरों के संघर्ष के दौरान जब मजदूर हिंसक हो गये तो गांधी जी सख्त नाराज हुए, इसी नाराजगी को व्यक्त करने के लिए वे भूख हड़ताल पर बैठ गये। इस बारे में अंग्रेज डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट एक दिलचस्प कहानी बयान करती है– 'गांधी जी पर कामगारों ने आक्षेप किया कि वे मिल मालिकों के मित्र हैं उनकी मोटरगाड़ियों में घूमते हैं और उनके साथ दावतें खाते हैं जबकि बुनकर भूखों मर रहे हैं"। (आधुनिक भारत : सुमित सरकार, पृष्ठ 206) इसी ताने से दुखी होकर वे भूख हड़ताल पर गये थे जो हिन्दुस्तान की पहली भूख हड़ताल थी। गांधी जी के राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक अन्तर्विरोध थे। अपनी आरंभिक दार्शनिक किताब "हिन्द स्वराज" (1909) में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि– "भारत का वास्तविक शत्रु अंग्रेजी राज्य नहीं है अपितु समग्र आधुनिक औद्योगिक सभ्यता है"। जैसा कि शुरू में ही प्रस्तावित किया गया है कि प्रेमचन्द के ऊपर गांधी जी का प्रभाव एक सीमा तक ही है और वे गाधी जी के अंध अनुयायी नहीं है। प्रेमचन्द की राय पूंजीपतियों और जमींदारों के बारे में क्या थी इसको देखिये – "यह आशा करना कि पूंजीपति किसानों की दीनदशा से लाभ उठाना छोड़ देंगे, कुत्ते से चमड़े की रखवाली करने की आशा है। इस खूँखार जानवर से अपनी रक्षा करने के लिये हमें स्वयं सशस्त्र होना पड़ेगा।" (प्रेमचन्द : प्रतिनिधि संकलन, सम्पादक– खगेन्द्र ठाकुर, पृष्ठ 174,) 1921 के आरंभ में संयुक्त प्रान्त में होने वाली किसान सभाओं के बावत एक वायसराय की टिप्पणी थी कि – " किसानों के नाम पर होने वाली सभाओं में भाग लेने वाले अधिकांश लोग ऐसे हैं जिनकी भूमि छिन चुकी है और जिन्हें विश्वास है कि गांधी जी उन्हें उनकी भूमि वापस दिला देंगे, और निम्न वर्ग के श्रमिक हैं जो सोचते हैं कि गांधी जी उन्हें जोत दिलायेंगे।" (आधुनिक भारत : सुमित सरकार, पृष्ठ 244) भूमि छीनी जमींदारों ने। अधिक लगान बढ़ाने के लिये पुराने किसानों से भूमि छीन कर नये अनुबन्ध के तहत नये किसान आये। और इन्हीं जमींदारों के पक्षधर हैं गांधी जी। फैजाबाद के एक अधिवेशन में उन्होंने भाषण दिया कि – "वे (किसान) कष्ट भले ही उठा लें पर संघर्ष न करें, क्योंकि उन्हें एकजुट होकर सबसे शक्तिशाली जमींदार अर्थात् सरकार के विरूद्ध युद्ध करना है।" और

ठीक इसी समय वे अपने पत्र 'यंग इंडिया' मे भी इसी बात को दोहराते हैं – "बेहतर है कि हम सरकार का कर या जमींदार के लगान न रोके स्मरण रहे कि जमींदारों को हमें अपना मित्र बनाना है । (आधुनिक भारत : सुमित सरकार, पृष्ठ 230) इन तमाम विरोधाभासों के बीच 1921 में असहयोग आन्दोलन के समय मुंशी प्रेमचंद ने भी सरकार से असहयोग करते हुये सरकारी स्कूल से त्याग पत्र दे दिया। वे उन दिनों गोरखपुर में थे। प्रसिद्ध वामपंथी नेता अमृत श्रीपाद डांगे ने भी आरम्भ में असहयोग आन्दोलन में बहुत सक्रिय भूमिका निभाई थी।

अहमदाबाद मिल मजदूर हड़ताल के दौरान ही गांधी जी का बहुत ही विवादास्पद बयान आया कि पूँजीपति और जमींदार मजदूरों और किसानों के हित सरंक्षक है।' यद्यपि मुंशी प्रेमचंद के आरम्भिक उपन्यास प्रेमाश्रम, कायाकल्प, और कर्मभूमि ह्रदय परिवर्तन और वर्गसमन्वय बहुत मुखर है, बावजूद इसके प्रेमचंद ने प्रेमाश्रम में सामाजिक परिवर्तनो के निमित्त कुछ बेहद जरूरी कार्यो को अन्जाम दिया। जिसमे धार्मिक रूढ़ियों का विरोध विशेष था। सैद्धान्तिक तौर पर तो वे मानते ही आ रहे थे कि – "ईश्वर को जिस तरह पौधों और खटमलों के मरने–जीने से कोई मतलब नहीं उसी तरह मनुष्यरूपी कीटों से भी उसे कोई प्रयोजन नहीं' (प्रेमचन्द : प्रतिनिधि संकलन, सम्पादक– खगेन्द्र ठाकुर, पृष्ठ 75,) लेकिन मुंशी जी यह भी मानते है कि – "हमने तो मोटी सी बात समझ ली है कि ईश्वर रोम–रोम में अणु–अणु में व्याप्त है। मगर उसी तरह जैसे हमारी देह में प्राण हैं उसका काम केवल शक्ति और जीवन दे देना है उस शक्ति से हम जो चाहे काम लें यह हमारी इच्छा पर है।" (सन्दर्भ वही) इसी ईश्वर को उन्होंने प्रेमाश्रम में देश–निकाला दे दिया। प्रेमचन्द सजग है अतः सवाल उठा सकते हैं कि – "अगर ईश्वर अपने भक्तों की हिमायत करता तो आज मन्दिरों, देवालयों और मस्जिदों की यह तपो भूमि क्यों इस दशा में होती?" (पृष्ठ 75 : सन्दर्भ वही) लेकिन प्रेमाश्रम में दुखरन भगत ने ईश्वर को क्यों वनवास दिया ? वे तो सारी कायनात को ईश्वर में ही देखते हैं। भला किया तो भगवान की इच्छा बुरा हुआ तो भगवान की इच्छा। हुआ यह कि गांव में अचानक दौरे पर आये हाकिमों के लिये मैदान को साफ कर टेनिस कोर्ट बनाया जाना है और यह सारा काम तहसीलदार को सम्पन्न कराने के निर्देश हैं। तहसीलदार साहब गांव के बूढ़े, कुलीन सबको पकड़ लाते हैं। दुखरन पहले तो बहाना करते हैं, लेकिन कादिर के कहने से घास छीलने पर राजी हो जाते हैं। मैदान की सफाई के उपरान्त लीपने की बारी आने पर वे साफ मना कर देते हैं और घर जाने को उद्धत होते हैं – "तहसीलदार ने पूछा– इधर कहाँ ? दुखरन ने उदण्डता से कहा कि घर जहा रहा हूँ। तहसीलदार – और लीपेगा कौन? दुखरन–जिसे गरज होगी वह लीपेगा। तहसीलदार– इतने जूते पड़ेंगे कि दिमाग की गर्मी उतर जायेगी।" जूते खाने की धमकी के बावजूद दुखरन मैदान लीपने को राजी नही हैं। फिर, "तहसीलदार – इस पर शामत सवार है। है कोई चपरासी, जरा लगाओ तो बदमाश को पचास जूते, मिजाज ठण्डा हो जाये।" यह हुक्म पाते ही एक चपरासी ने दुखरन को गिराकर जूते से पीटना शुरू कर दिया। इस सबका समवेत परिणाम यह रहा कि – "भगत जड़वत् भूमि पर पड़े रहे। संज्ञा शून्य हो गये, उनके चेहरे पर क्रोध या ग्लानि का चिन्ह भी न था। उनके मुख से हाय तक न निकलती थी दीनता ने समस्त चैतन्य शक्तियों का हनन कर दिया। 'जूता–काण्ड' के बाद बचता ही क्या है? जिस शालिग्राम की बटिया को वे पिछले उन्तालीस सालों से नहलाते–धुलाते आ रहे थे, खुद चना–चबेना करते उनको मोहनभोग का भोग लगाते थे, अफसोस! कि उसने उनका पक्ष नहीं लिया। दुखरन ऐलान करते हैं कि "धिक्कार है मुझ पर जो फिर ऐसे ठाकुर का नाम लूँ, जो इन्हें अपने घर में रखू और फिर इनकी पूजा करूं! हाँ मुझे धिक्कार है। ज्ञानियों ने सच कहा है कि वह अपने भक्तों के वैरी होते हैं उनका अपमान कराते हैं उनकी जड़ खोदते हैं और उससे प्रसन्न होते हैं जो इनका अपमान करे।" (पृष्ठ 190: प्रेमाश्रम) मनोहर और कादिर भौचक हैं दुखरन की मानसिक दशा से। अब सवाल था कि 'भगवान' को फेंका कहां जाये, घूरे पर अथवा कुएं में'? दुखरन के ऊपर कादिर और मनोहर दोनों की इस बात का कोई असर न हुआ कि वे संसार के मालिक हैं, उनकी महिमा अपंरपार है अथवा वे बुराई से भलाई करते हैं अन्ततः दुखरन ने शालीग्राम की प्रतिमा को जोर से एक ओर फेंक दिया क्योंकि अब एक बड़ी सच्चाई उनके सामने मौजूद थी– "यह सब मन को समझाने का एक ढकोसला है..... यह पत्थर का का ढेला है, निरा मिट्टी का पिण्डा' (पृष्ठ 191 : प्रेमाश्रम) ईश्वर के देश–निकाले का मतलब यह है कि आदमी अपनी तकदीर का खुद मुख्तार है। परमुखापेक्षिता समाप्त हुई यानी आदमी स्वतंत्र हुआ। जब स्वतंत्र हुआ तो शक्तिशाली भी और लड़ाकू भी। प्रेमाश्रम में प्रेमचन्द का जुझारू व्यक्तित्व बलराज और उसके पिता मनोहर के संयुक्त चरित्रों के माध्यम से सामने आया है। दाम से ज्यादा माल लेने का दस्तूर जमींदारों में बना ही रखा था। मनोहर में इसका तीखा प्रतिवाद मिलता हैं। वाकया यह है कि जमींदार ज्ञानशंकर का चपरासी गिरवर महाराज गांव में घी लेने के वास्ते आया है पेशगी के रूपये बांट रहा है। घी का बाजार भाव रूपये का दस छटांक है। जब कि वे सेर भर चाहते हैं। गांव लखनपुर के सारे रैयत डर के मारे जमींदार के आदेश को स्वीकार कर लेते हैं लेकिन मनोहर तैयार नहीं होता गिरवर महाराज उसको धमकी देता है– 'मनोहर', घी तो

तुम दोगे, दौड़ते हुए, पर चार बाते सुनकर। जमींदार के गांव में रहकर उससे हेकड़ी नहीं चल सकती। अभी कारिंदा साहब बुलाएगें तो सलाम भी ठोकोगे, हाथ–पैर भी पड़ोगे, मैं सीधे कहता हूँ तो तेवर बदलते हो। "मनोहर ने गर्म होकर कहा– "कारिंदा कोई तोप है न जमींदार कोई हौवा है। यहाँ कोई दबैल नहीं है। जब कौड़ी–कौड़ी लगान चुकाते हैं तो धौंस क्यों सहे ......अच्छा जावो तोप से उड़वा देना।"

प्रेमचन्द के उपन्यासों की एक बड़ी विशेषता है : पाखंडियों का भण्डाफोड़। और यह भण्डाफोड़ कथनी और करनी के भेद के पुख्ता आधार पर है। 'प्रेमाश्रम' में ज्ञान शंकर का जो चरित्र है वह इसी का जीता–जागता उदाहरण है। पारंपरिक शब्दावली का उपयोग किया जाय तो ज्ञानशंकर 'प्रेमाश्रम' का मुख्य खलपात्र है। वह बहुत स्वार्थी, परपीड़क और सम्पत्ति के लिए किसी भी हद तक जाने वाला है। प्रकारान्तर से वह उस वर्ग का प्रतिनिधि चरित्र है जिसकी इच्छा बिना किसी श्रम के सब कुछ हासिल करने की होती है, श्रम से इस वर्ग का पैदायशी वैर है, लेकिन आकांक्षाएं आकाश चूमती हुयी। प्रेमचन्द के तमाम खलपात्रों की भांति वह भी किसानों का दुश्मन है और रियाया से क्रूर व्यवहार करता है। अकस्मात उसका सहपाठी ज्वाला सिंह जिले का डिस्ट्रिक मजिस्ट्रेट बन कर आता है ज्वाला सिंह का संबल पाकर वह और भी आतताई बन गया। चूँकि उसके पिता जटाशंकर और उनके भाई प्रभाशंकर का संयुक्त परिवार था तो ज्ञानशंकर सोचता है कि मेरे परिवार में कम प्राणी है जबकि चाचा के परिवार में ज्यादा सदस्य। सामूहिक सम्पत्ति का अधिकतम हिस्सा वही उड़ा रहे है। इस क्षुद्रता और पारिवारिक द्वेष के कारण ज्ञानशंकर– "इसी फेर मे पड़े रहते कि चाचा के आठ प्राणियों पर जितना व्यय होता है उतना मेरे तीन प्राणियों पर। भोजन करने जाते तो बहुत सा खाना जूठा छोड़ देते। इतने पर भी संतोष न हुआ तो दो कुत्ते पाले। उन्हें साथ बैठाकर खिलाते। यहाँ तक कि प्रभाशंकर डाक्टर के यहाँ से कोई दवा लाते तो आप उतने ही मूल्य की औषधि अवश्य लाते चाहे उसे फेंक ही क्यों न दे।" जब उसकी पत्नी विद्या देवी इस तरह क्षुद्रताओं में उसका सहयोग नहीं करती तो वह उसे मायके का ताना देता है कहता है कि तुम वहां से रोकड़ नहीं लाती हो। 100–50 रूपये साल में मिल जाता है तो इतने पर ही तुम छिछले ताल की तरह उबलने लगती हो – "मैं तो ऐसे आदमी को पशु से गया गुजरा समझता हूँ जो आप तो लाखों उड़ाये और अपने निकटतम सम्बन्धियों की बात भी न पूछे।" (पृष्ठ 67 : प्रेमाश्रम)

यही दोहरा चरित्र ज्ञानशंकर ही नहीं पूरी जमींदारी और भारतीय राजनैतिक व्यवस्था का असली चेहरा है। रामायण में मारीच का बिम्ब केवल संयोगमात्र नहीं है। देश में आज भी बाढ़, सूखे और खलिहानों खेतों में आगजनी की घटनाओं से पीड़ितों का कोई लाभ हो न हो प्रजा वत्सल सरकार के माननीयों की चांदी हो जाती है। इसी को कहते हैं– बिल्ली के भाग्य से सिकहर का टूटना। इसी तरह का एक दृश्य प्रेमाश्रम में आया है, गोरखपुर रियासत में बाढ़ से पूरे गांव तवाह हो चुके हैं, जमींदार गायत्री देवी का दौरा होता है और कानूनगो से जो सम्वाद होता है देखिये : गायत्री – "आपके विचार से बाढ़ से खेती का कितना नुकसान हुआ है ? कानूनगो – अगर सरकार के तौर पर पहुंचती है तो रूपया में एक आना, निज के तौर पर पहुँचती है तो रूपये में बारहआना। गायत्री – आप लोग यह दोरंगी चाले क्यों चलते हैं? कानूनगों– हम लोगों से सच्चा हाल जानने के लिये तहकीकात नहीं करायी जाती बल्कि उसको छिपाने के लिये।"

ज्ञानशंकर की इच्छा थी कि परिवार को शिखर पर स्थापित किया जाये समृद्धि के नये मानदण्डों के आधार घोड़ा और फिटन खरीदा जाये और जब वे उस पर बैठें तो सारी दुनिया देखें कि – "जमींदार राय बहादुर ज्ञानशंकर जा रहे हैं"। इस स्वप्न की पूर्ति के लिये उनके ससुर रायबहादुर कमलानंद उन्हें गर्मी बिताने के लिये नैनीताल बुलाते हैं, अंग्रेजी पढ़े–लिखे लोगों से मिलवाते भी हैं, सलाह देते है कि लेडियों के रूप की प्रशंसा कैसे की जाये, लाटसाहबों से कैसे मिला जाये, बावजूद इसके ज्ञानशंकर की हालत– "उस पौधे की सी थी जो प्रतिकूल परिस्थिति में जाकर माली के सुव्यवस्था करने पर भी दिनों दिन सूखता जाता है" अब क्या हो ? यह सवाल ज्ञानशंकर को मथता रहता है। उसने बहुत सोची–समझी रणनीति से अपने को बतौर जनता का लेखक स्थापित करना शुरू किया। इस तरह वह कलम से उन सब लोगों की खबर लेने लगा जो उसे बोदा और बौड़म समझते थे। प्रेमचन्द उसके बारे में प्रेमाश्रम में टिप्पणी करते हैं कि – "ज्ञानशंकर की ईर्ष्या देशानुराग के रूप में प्रकट हुयी। असफल लेखक समालोचक बन बैठा अपनी असमर्थता ने साम्यवादी बना दिया।" अब उसे गांव की, जनता की, राष्ट्रीय आन्दोलन की फिक्र होने लगी दरअसल वह अपने दोस्त ज्वालासिंह को नीचा दिखाना चाहता है। जब से दुनिया को नीचा दिखाने के लिये ज्ञानशंकर साम्यवादी लेखक का लवादा ओढ़ता है तभी से सारे के सारे नेता और दल उसे – "रंगे सियार और लुटेरों का जत्था" लगने लगे। इन्हीं बनावटी विचारों को उसने सजीव शैली, व्यंग्य, मार्मिक उक्तियों से सजा–बजा कर 'हिन्दुस्तान रिब्यू' में छपवा दिया। वह सोच रहा था कि जब गांव और देश की जमीनी हकीकत का पता लोगों को लगेगा तो उसका तीव्र विरोध होगा। लोग उसके सिर पड़ जायेंगे। लेकिन यह क्या? – "जहां लोग उसका निरादर और अपमान करते थे वहां अब उसका मान और आदर करने लगे।"

पाखंड, क्षुद्रता और दोमुँहा चरित्रों के भीतर से प्रेमाश्रम की यही हल्की संघर्ष–चेतना उनके अन्तिम उपन्यास गोदान में व्यापक रूप ग्रहण करती है। कह सकते हैं कि गोदान किसान समस्या से सम्बन्धित प्रेमचन्द के उपन्यासों में सर्वथा नया उपन्यास है। अपने अनुभवों और भारतीय राजनैतिक अन्तर्विरोधों के भीतर से सन् 1932 तक आते–आते प्रेमचन्द ने यह भेद समझ लिया था कि महात्मा गांधी जिसे 'आत्मा की पुकार' या भीतर की आवाज कहते हैं वह एक से अधिक बार भरोसे की चीज नहीं है प्रेमचन्द भी स्वराज चाहते है और इसी सुराज पर गोदान से पहले 'गबन' में देवीदीन खटिक के माध्यम से सवाल भी खड़ा कर चुके थे कि स्वतंत्रता के बाद जो स्वराज आने वाला है उसका स्वरूप क्या होगा ? देवीदीन पूछता है कि– " साहब सच बताओ जब तुम सुराज का नाम लेते हो, उसका कौन सा रूप तुम्हारी आंखों के सामने आता है ? तुम भी बड़ी–बड़ी तलब लोगे, तुम भी अंग्रेजों की तरह बंगलों में रहोगे, पहाड़ों की हवा खाओगे, अंग्रेजी ठाठ बनाये घूमोगे। इस स्वराज से देश का क्या कल्याण होगा। तुम्हारी और तुम्हारे भाई–बन्दों की जिन्दगी भले आराम और ठाठ से गुजरे पर देश का तो कोई भला नहीं होगा.......... अभी तुम्हारा राज नहीं है तब तो तुम भोग–विलास पर इतना मरते हो, जब तुम्हारा राज आयेगा तब तो तुम गरीबों को पीसकर पी जाओगे"। (पृष्ठ 68 : प्रेमचन्द और उनका युग)। यानी प्रेमचन्द सारी कबायद समझ रहे थे और मन ही मन दुखी थे। इसीलिए गोदान के जमींदार अमरपाल सिंह का जो बिम्ब उन्होंने खड़ा किया है वह उनके व्यंग्य–वाणों से बिंधा हुआ है। स्वराज को प्रेमचन्द भी चाहते थे उन गूंगे बेजुबान लोगों के लिये जो दिन–ब–दिन दरिद्र होते जा रहे थे। और कांग्रेस सिर्फ अंग्रेजी हुकूमत की वापसी नहीं चाहती बल्कि अधिकार और ओहदे भी चाहती है। प्रेमचन्द ने विचार करके देखा– "अगर आज सभी अंग्रेज अफसरों की जगह हिन्दुस्तानी आ जाये तब भी हम स्वराज से उतनी ही दूर रहेंगे जितनी दूर हैं।" स्वराज कांग्रेस की मांग थी प्रेमचन्द उसे आन्दोलन का रूप देना चाहते है। वे देख रहे थे कि स्वराज के लिये लड़ने वाले होरी, हीरा, शोभा और रूपा ही नहीं बल्कि जमींदार अमरपाल सिंह और मिल मालिक खन्ना भी है। वही लोग जेल भी जा रहे हैं, राजा की पदवी भी ले रहे है। जनता के सेवक भी कहला रहे हैं और यही लोग पैसे के बल पर चुनाव भी जीत रहे है। काउन्सिल के सदस्य बनते है और अपने हितों की रक्षा में संलग्न है। सन् 1932 से 1936 तक भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन या यूं कहें कि प्रजातान्त्रिक स्वतन्त्रता आन्दोलन का चेहरा प्रेमचन्द के सामने साफ दिखाई देता था। 'विविध प्रसंग' में एक जगह इसी स्वतंत्रता आन्दोलन को वे– "राष्ट्रीय बुर्जुआ की साजिश' कहते है। वस्तुतः इसी उक्ति में मुंशी जी के आदर्शो को निहित होते देखा जा सकता है और इसी में गोदान की यथार्थता भी साफ–साफ दिखाई देती है। 1932 के आते–आते प्रेमचन्द अपने को इस षड़यन्त्र से अलग कर लेते है। वे अपनी आश्रमवादी नैतिकता और औपन्यासिक निदान से बाहर आकर भारतीय वास्तविकताओं का नये सिरे से पुनर्मूल्यांकन और साक्षात्कार करते हैं। कहना आवश्यक नहीं होगा कि गोदान उसी साक्षात्कार का एक प्रभावी दस्तावेज है। इसी उपन्यास में मिर्जा खुर्शद एक जगह कहता है कि– " जिसे आप डैमोक्रेसी कहते है वह व्यवहार में बड़े जमींदारों और व्यापारियों का राज है और कुछ नहीं। चुनाव में बाजी वही ले जाता है जिसके पास रूपये है।"

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रेमाश्रम– प्रेमचन्द।
2. कायाकल्प – प्रेमचन्द।
3. गोदान – प्रेमचन्द।
4. रंगभूमि – प्रेमचन्द।
5. भारत का आधुनिक इतिहास – सुमित सरकार।
6. मानसरोवर – प्रेमचन्द।
7. प्रेमचन्द – प्रतिनिधि संकलन सं. खगेन्द्र ठाकुर।
8. प्राचीन भारतीय एवं सामाजिक संस्थाए : डॉ. कैलाश चन्द्र जैन।
9. भारत–भारती – मैथिली शरण गुप्त।
10. राग–विराग – सं. डा. रामविलास शर्मा।
11. मध्यकालीन भारत – रमेश चन्द्र मजुमदार।
12. प्रेमचन्द और उसका युग – रामविलास शर्मा।
13. भारत : इतिहास और संस्कृति : गजानन माधव मुक्तिबोध।

*****